इकाई 22 प्रत्ययसर्ग

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 प्रत्ययसर्ग – कारिका 46–52

22.3 प्रत्यय सर्ग के विशेष संदर्भ

22.4 सारांश

22.5 शब्दावली

22.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

22.7 अभ्यास प्रश्न

22.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी :

- प्रत्यय सर्ग की संकल्पना का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- प्रत्यय सर्ग की व्यत्पत्ति, परिभाषा एवं अभिधेय के बारे में जान सकेंगे।
- बुद्धि से संबद्ध परिणामों की जानकारी प्राप्त करेंगे; तथा
- प्रत्यय सर्ग के संदर्भ में विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और अष्टसिद्धि के बारे में भी बोध प्राप्त करेंगे।

22.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा में प्रत्यय का अर्थ होता है ज्ञान। जिससे प्रतीति अर्थात् ज्ञान हो, उसे प्रत्यय या बुद्धि कहते हैं, उसका सर्ग प्रत्यय सर्ग है। सांख्यदर्शन का महत्त्वपूर्ण विषय प्रत्यय सर्ग है। इसकी आवश्यकता स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रत्यय सर्ग के बिना तन्मात्र सर्ग न तो भोगरुप पुरुषार्थ का साधन हो सकता है, और न उसका स्वरुप ही सिद्ध हो सकता है।

सामान्यतया ज्ञान का साधन बुद्धि को स्वीकार किया जाता है, अतएव प्रत्यय का अर्थ बुद्धि भी है। सांख्य दर्शन में भी प्रत्यय सर्ग के सन्दर्भ में प्रत्यय शब्द का प्रयोग बुद्धि के लिये ही हुआ है। अतः प्रत्यय सर्ग का अर्थ हुआ बौद्धिक सृष्टि अर्थात् "प्रतीयतेऽनेनेति प्रत्ययो बुद्धि तस्य सर्गः"।

प्रत्यय सर्ग विषयक चिन्तन सांख्य दर्शन की एक मौलिक अवधारणा है। यद्यपि बुद्धि के विषय में अन्य दर्शनों में भी कुछ न कुछ अवश्य उपलब्ध होता है किन्तु सर्ग अर्थात् सृष्टि की परम्परा में प्रत्यय सर्ग का विवेचन सांख्य में ही स्पष्टतः उपलब्ध होता है। इस विषय में सांख्यकारिकाकार ईश्वरकृष्ण ने प्रत्यय सर्ग अर्थात् बौद्धिक परिणामों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि निश्चय करने वाला तत्व बुद्धि है। धर्म, ज्ञान ,वैराग्य और ऐश्वर्य ये बुद्धि के सात्विक परिणाम है और इनसे विपरीत अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य ये बुद्धि के तामस रुप है –

अध्यवसायोबुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद् रुपं तामस्मस्माद्विपर्यस्तम्।।

अध्यवसाय पद की व्याख्या करते हुए सांख्यतत्त्वकौमूदी में वाचस्पतिमिश्र जी लिखते हैं – यह लोक प्रसिद्ध है कि प्रत्येक व्यवहार या कार्य करने वाला व्यक्ति पहले व्यवहार या कार्य का इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करके मन के द्वारा उस पर संकल्प विकल्पात्मक विचार करके मैं इस कार्य को करने का अधिकारी हूं ऐसा अभिमान करने के बाद में मुझे यह करना चाहिये यह निश्चय करता है और फिर उस कार्य में प्रवृत्त होता है। इसमें चित्स्वरुप पुरुष के संनिधान से चैतन्य प्राप्त करने वाली बुद्धि को जो करना चाहिए यह निश्चय है वही, अध्यवसाय है जो कि बुद्धि का अपना असाधारण व्यवहार या कार्य है।

बुद्धि के इस लक्षण के बाद कारिकाकार ने उसके परिणाम अर्थात् सर्ग की चर्चा की है और मूलतः उस प्रत्यय सर्ग को दो प्रकार का स्वीकार किया है – सात्विक प्रत्यय सर्ग एवं तामसिक प्रत्यय सर्ग। अर्थात् विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि रुप बुद्धि के परिणामों से हुए इस प्रत्यय के 50 प्रकार है।

22.2 प्रत्ययसर्ग कारिका (46–52)

"एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाऽशक्तितुष्टिसिद्धयाख्यः।
गुणवैषम्यविमर्दात् तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत्"।।

व्याख्या : धर्म, अधर्म, ज्ञान–अज्ञान, वैराग्य–अवैराग्य, तथा ऐश्वर्य–अनैश्वर्य रुप यह प्रत्यय सर्ग चार प्रकार का है जिसे विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि, सिद्धि इन नामों से कहा जाता है और सत्त्व रज, तम इन तीन गुणों का जो न्युनाधिक्यरुप वैषम्य तथा उससे होने वाला जो एक या दो गुणों का अभिभव और उस अभिभव के कारण विस्तार में पचास भेद हो जाते है। इन पर क्रमवार चर्चा इस प्रकार हैः

1. **विपर्यय** : सांसारिक विषयों का जिससे ज्ञान होता है, वह हुआ प्रत्यय अर्थात् बुद्धि एवं उसका जो सर्ग है वह चार प्रकार का है। उसमें प्रथम जो विपर्यय है वह अज्ञान अर्थात् अविद्या रुप है, वह भी बुद्धि में रहने के कारण बुद्धि का धर्म है । यह तमोगुण समुत्पन्न परिणाम है।

   विपर्यय शब्द का अर्थ विपरीत होता है। अज्ञान ज्ञान का अत्यन्ताभाव नहीं है अपितु वह भी ज्ञान ही की तरह पर ज्ञान से भिन्न एक भावात्मक तत्त्व है। अज्ञान में पर्युदास नञ् का प्रयोग है जो "तद्भिन्नतत्सदृश" का बोध कराता है। भगवान् पतंजलि ने भी कहा है ज्ञान से भिन्न रुप में प्रतिष्ठित मित्थ्या ज्ञान को ही विपर्यय कहते हैं। वेदान्त में इसे अविद्या कहा है जो अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश नामक भेदों से पांच प्रकार की होती है। विष्णुपुराण में इन्हीं को पंचपर्वा अविद्या के नाम से कहा गया है। यह अविद्या बुद्धि का धर्म है जो उस पर तमोगुण के प्रभाव का परिणाम है? अतः विपर्यय अज्ञान ही है।

2. **अशक्ति** भी त्रयोदश करणों के वैकल्य अपटुता के कारण बुद्धिधर्म ही हैं। एकादश– इन्द्रियाँ, बुद्धि और अहंकार अपने अपने व्यापारों के त्रयोदश करण हैं। करणवैकल्यहेतुका – इसका अर्थ यह है कि ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों के विकल हो जाने पर वे अपने अपने विषयों का ग्रहण नहीं कर पायेंगी। इन्द्रियों के वैकल्य

रुप दोषों के कारण फिर मन, अहंकार, बुद्धि आदि इनमें भी वह दोष परम्परा फैल जाएगी, अर्थात् मन, अहंकार आदि भी अपने अपने व्यापारों को करने में सर्वथा सर्वथा असमर्थ हो जायेंगे। कारण जब इन्द्रियाँ ही अपने विषयों का ग्रहण नहीं कर पायेंगी तो विषयों के अभाव में मन, अहंकार आदि का व्यापार भी नहीं होगा इसलिये शक्ति विहीन होने के कारण अशक्ति है। अशक्ति ज्ञान की प्राप्ति के असामर्थ्य को कहते हैं।

3. **तुष्टि** : सिद्धि भी जो कि वक्ष्यमाण लक्षण हैं, बुद्धिधर्म ही हैं। उन विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि तीनों में ज्ञान को छोड़कर सातों धर्माधर्म आदि का अन्तर्भाव है और अष्टम बुद्धिधर्म ज्ञान का सिद्धि में अन्तर्भाव है। प्रकृति से भिन्न पुरुष तत्त्व है, इस बात को जानकर भी श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा उसके विवेकरुपी साक्षात्कार के लिए किसी असत् उपदेश के कारण प्रवृत्त न होना ही तुष्टि का लक्षण है।

"पञ्च विपर्ययभेदाभवन्त्यशक्तिश्च करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदा तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः"।।47।।

व्याख्या : पांच विपर्यय के भेद हैं और त्रयोदशविध करणों के वैकल्य से 28 प्रकार हैं, 9 प्रकार की तुष्टि, और 8 प्रकार की सिद्धि है। इस प्रकार 50 भेद हो जाते हैं। तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र विपर्यय के ये पांच भेद होते हैं। अन्तः और बाह्य करणों की विकलता से होने वाली अशक्ति अठ्ठाइस प्रकार की होती है। इसी प्रकार तुष्टि के नौ तथा सिद्धि के आठ भेद होते है।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश ही क्रम से तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र, हैं इन्हें योगशास्त्र में पंचक्लेश कहा गया है। वहीं पर योगभाष्यकार ने इन्हें स्पष्ट रुप से विपर्यय कहा है।

विशेष

पंच : अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये क्रमशः तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र, इन पांच नाम वाले पांच विपर्यय अज्ञान विशेष हैं। क्योंकि विपर्यय से उत्पन्न हुए अस्मिता आदि भी विपर्यय स्वभाव वाले होते हैं।

अविद्या : अनित्य को नित्य समझना, अशुचि को शुचि समझना, दुख को सुख समझना अनात्मा को आत्मा समझना। यह अन्धकार की तरह आत्मज्ञान की आवरक होने से "तम" शब्द से कही जाती है। अनित्य में नित्यता, अपवित्र में पवित्रता, दुःख में सुख तथा अनात्मा में आत्मा का बोध ही अविद्या है।

अस्मिता : बुद्धि और पुरुष दोनों एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं, फिर भी दोनों को अभिन्न समझ लेना अज्ञान एवं यह क्लेश रुप है। बुद्धि और पुरुष को मोहित करने के कारण इसे मोह शब्द से कहा जाता है। द्रष्टा पुरुष और दर्शन शक्ति बुद्धि का अभिन्न रुप में प्रतीत होना अस्मिता है।

राग : अनात्मधर्म सुख की तृष्णा है। इसी को महामोह कहते हैं। क्योंकि समस्त वस्तुओं में मोह की पराकाष्ठा कराने का साधन यही राग है। सुख का अनुभव करने के बाद उसके या उसकी प्राप्ति के साधन के प्रति तृष्णा ही राग है।

द्वेष : अनात्मधर्म दुःख के त्याग की ईच्छा। क्रूर तामस धर्म होने के कारण इसे तामिस्र कहते हैं।

अभिनिवेश : अनात्मधर्म मरण का आत्मा के विषय में भय है। विद्वान, मूर्ख, पशु आदि सभी को अन्धे की तरह अज्ञान पैदा कराने वाला तामस धर्म होने के कारण उसे अन्धतामिस्र कहते हैं।

"भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा, तथा भवत्यन्धतामिस्रः"।।48।।

व्याख्या : तम का अष्टविध भेद है और अष्टविध भेद मोह का भी है। महामोह दस प्रकार का है, तामिस्र अट्ठारह प्रकार का है तथा अन्धतामिस्र भी अट्ठारह प्रकार का है। इस प्रकार सभी मिलाकर 62 अवान्तर भेद हो जाते हैं।

तम : तम अविद्या का अष्टविध भेद है, अर्थात् अविद्या आठ प्रकार की है। अव्यक्त – प्रकृति, महतत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा इन अनात्मभूत – आत्मा से भिन्न आठ पदार्थों में आत्मबुद्धि, यहीं अविद्या यानी तम है। यह अविद्या रुप तम अव्यक्त, महतत्त्व, अहंकार तथा पञ्चतन्मात्राओं का विषय बनता है। इस कारण यह अविद्या रुप तम आठ प्रकार का है।

मोह : मोह के भी अष्टविध भेद चकार के सम्बन्ध से जान लेने चाहिए। देवता लोग अणिमा, महिमा, लघिमा आदि अष्टविध ऐश्वर्य को प्राप्त करके अपने अमृतत्त्व – अमरत्त्व का अभिमान करते हुए अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य को हमेशा के लिए अपना मान बैठते हैं। इस प्रकार यह अस्मितारुप मोह अष्टविध ऐश्वर्य विषय वाला होने से आठ प्रकार का है।

महामोह : दस प्रकार का है। शब्द, स्पर्श, रुप, रस और गन्ध, ये शब्दादि पांच विषय दिव्य अदिव्य भेद से दसविध हो जाते हैं और ये रागोत्पादक हैं। अतः इन रागोत्पादक दशविध विषयों में राग अर्थात् आशक्ति हो जाना ही महामोह है। इस महामोह के दिव्य अदिव्य भेद से शब्दादि दस विषय हैं, अतः यह दशविध विषय वाला होने के कारण दश प्रकार का है।

तमिस्र : तामिस्र द्वेषरुप है और वह अठारह प्रकार का है। शब्दादि विषय जो कि स्वरुपतः रागोत्पादक हैं, वे दिव्य अदिव्य भेद से दस प्रकार के हैं, और आठ अणिमादि ऐश्वर्य हैं, अतः अठारह हो जाते हैं। किन्तु ये अणिमादि स्वरुपतः रागोत्पादक नहीं हैं, बल्कि रागोत्पादक जो शब्दादि हैं, उनके उपाय – साधनभूत हैं; और ये शब्द, स्पर्श, आदि विषय भोग्यरुप से उपस्थित होकर परस्पर में एक दूसरे से उपहन्यमान हो जाते हैं। इस कारण इनके उपायभूत अणिमादि स्वरुप से ही शत्रुवत क्रोध के विषय बन जाते है। इस प्रकार दिव्य अदिव्य भेद से दशविध शब्दादि के साथ अष्टविध अणिमादि मिलकर अठारह हो जाते हैं। और इनका विषय अर्थात् इनमे होने वाला द्वेष तामिस्र है, तथा वह पूर्वोक्त अठारह प्रकार के विषय वाला होने से अठारह प्रकार का है।

अन्धतामिस्र : अन्धतामिस्र भी तथाविध ही है, अर्थात् अठारह प्रकार का है। अन्धतामिस्र नाम अभिनिवेश का है। देवता आदि लोग अणिमा आदि अष्टविध ऐश्वर्य को प्राप्त करके शब्दादि दश विषयों का भोग करते हुए डरते रहते हैं कि हमारे भोग्य विषय जो शब्द, स्पर्श आदि हैं तथा उनके साधनभूत उपाय जो अणिमादि है, उन्हें असुर लोग नष्ट न कर दे, यही भय अभिनिवेश तथा अन्धतामिस्र कहलाता है। यह भय – अभिनिवेश – अन्धतामिस्र अष्टादश विषय वाला होने के कारण अठारह प्रकार का है इस प्रकार यह विपर्यय या अविद्या पांच विकल्प – प्रकार वाला होता हुआ अवान्तर भेद से 62 प्रकार का हो जाता है।

विशेष : अष्टविध ऐश्वर्य की सात्विकता का ज्ञान भी अष्टविधविषयक ही होता है। अमृतत्व से रहित रहने पर भी ये देवता अमृतत्त्व का अभिमान करते है। अर्थात् अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य को पाकर "वयम् अमृताः स्मः" ऐसा अभिमान करने लगते हैं। समझते हैं कि हमें प्राप्त हुआ यह अणिमादि ऐश्वर्य नित्य है, अर्थात् अविनाशी है, मृत्यु लोक में रहने वाले योगियों तक का ऐसा ऐश्वर्य नहीं है।

इस प्रकार अशाश्वतिक ऐश्वर्य में भी सात्विकता का अभिमान "अतद्वति तत्प्रकारकज्ञान" होने से अस्मिता अर्थात् मोह की विपर्यय विशेषता स्पष्ट हो जाती है।

इन्द्रियवध

"एकादशेन्द्रियवधाः सहबुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययातुष्टिसिद्धीनाम्"।।

व्याख्या : एकादश इन्द्रियाँ है अतः उनके वध – इन्द्रियविनाशकारणीभूत दोष भी एकादश ही हैं। एवं नव प्रकार की तुष्टि तथा आठ प्रकार की सिद्धि के विपर्यय से बुद्धि के सत्रह वध हैं। इस प्रकार बुद्धि वध के साथ मिलकर एकादश इन्द्रियवध 28 प्रकार के हो जाते हैं, वही 28 भेद वाली अशक्ति उद्दिष्ट है।

यहां यह प्रश्न होता है कि अन्धत्व, बधिरत्व आदि वक्ष्यमाण इन्द्रियवध इन्द्रियधर्म हैं और अशक्ति को पूर्व में बुद्धिधर्म बतलाया जा चुका है। तब फिर एकादशेन्द्रियवधाः सहबुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा इस कथन से अशक्ति के अन्दर इन्द्रियवध को क्यों समाविष्ट किया गया है? इसका उत्तर है कि कारिका में जो इन्द्रियवध का ग्रहण है, वह इस बात का सूचक है कि इन्द्रियवध बुद्धि का हेतु है।इस कारण इन्द्रियवध का ग्रहण है न कि अशक्ति के 28 प्रकार के भेदों के पूरणार्थ इन्द्रियवध का ग्रहण है।

विशेष : इन्दियाँ ग्यारह हैं जो ज्ञान के निमित्त हैं। इनमें दोष उत्पन्न होने पर इनकी सहायता से काम करने वाली बुद्धि भी अशक्त हो जाती है और पुरुष को अभिलिषित अर्थ का समर्पण नहीं कर पाती। यद्यपि इन्द्रियों में उत्पन्न दोष अशक्ति का कारण है जिसे बुद्धि की सृष्टि माना जाता है तथापि हेतु और हेतुमान् में अभेद के सिद्धन्त को स्वीकार करते हुए "बधाः अशक्तिः" की सामानाधिकरण्य की उक्ति से इन्द्रियों के दोषों को भे यहां अशक्ति के रुप में परिगणित किया गया है।

एकादशेन्द्रियवधाः –

पांच ज्ञानेन्द्रियों के वध इस प्रकार बतलाए गये है।

1. बाधिर्य – बधिरता
2. कुष्ठिता – कुष्ठरोग
3. अन्धत्व – अन्धा हो जाना, चक्षु का नष्ट हो जाना
4. जड़ता – रसनाशक्ति का अभाव अर्थात् खाए हुए पदार्थों के स्वाद का ज्ञान न होना
5. अजिघ्रता – घ्राणशक्ति का अभाव हो जाना ये तो पांच ज्ञानेन्द्रियों के वध बतलाए गये है।

पांच कर्मेन्द्रियवध इस प्रकार हैं –

1. मूकता– वाक्शक्ति का अभाव हो जाना

2. कौण्य– हाथ रुप शक्ति का अभाव हो जाना
3. पंगुत्व– पादशक्ति का अभाव अर्थात् चलना फिरना एकदम से बन्द हो जाना
4. क्लैब्य– नपुंसकत्व
5. उदावर्त– शौचनिःसरणरोधक रोग,

ये पांच कर्मेन्द्रिय वध हैं। मन रुप इन्द्रियवध है। मन्दता अर्थात संकल्पशक्ति का अभाव हो जाना यानी सुखादिविषयक ज्ञान संपादन में मन्द हो जाना ये 11 यथासंख्य श्रोत्रादि इन्द्रियवध हैं। इन एकादश इन्द्रियों के वधात्मक दोषों के कारण एकादश संख्या वाली ही बुद्धि की वधदोषात्मिका अशक्ति अपने व्यापार – अध्यवसाय में स्वीकार की गयी है। इस प्रकार एकादश इन्द्रियवध दोषों से उतपन्न होने के कारण बुद्धि की अशक्ति एकादशधा – 11 प्रकार की कही जाती है।

हेतु यहां एकादश इन्द्रियवध है और हेतुमान् है बुद्धिवध रुपी अशक्ति, इन दोनों का सामानाधिकरण्य अभेदरुप कथन कारण और कार्य में अभेद विवक्षा से ही है।

तुष्टिः

"आध्यात्मिकयश्चतस्रः प्रकृतुपादानकालभागाख्याः।
बाह्या विषयोपरमात् पञ्च नवतुष्टयोऽभिमताः"।।50।।

व्याख्या : प्रकृति से भिन्न आत्मा के विषय में अध्यवसायात्मिक जो सन्तोष वृत्तियाँ होती हैं उन्हें आध्यात्मिक (आभ्यन्तर) कहते हैं। प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य ये है आख्याय (नाम) जिनकी ऐसी आध्यात्मिक तुष्टि रुप वृत्तियाँ चार हैं । जैसे –

प्रकृति – प्रकृतिः मोक्षदा इति सन्तोषः।
उपादान – उपादानमेव मोक्षदम् इति सन्तोषः।
काल – कालः समये प्राप्ते सत्येव मोक्षः इति सन्तोषः।
भाग्य – भाग्यं भाग्यादेव मोक्षः इति सन्तोषः।

इस प्रकार प्रकृति आदि संज्ञा वाली ये चार आध्यात्मिक (आभ्यन्तर) तुष्टियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गन्ध संज्ञक पांच विषयों के उपरम (वैराग्य) से बाह्य तुष्टियाँ पांच है। इस रीति से आध्यात्मिक चार और बाह्य पांच मिलकर नौ तुष्टियाँ सांख्याचार्यों को अभिमत हैं।

विशेष : प्रकृति आदि जडवर्ग से अतिरिक्त आत्मा है। यह सद्गुरु के उपदेश से साधारणतया जानकर जो पुरुष जानने के बाद भी इस आत्मा का श्रवण मननादि के द्वारा प्रकृति, पुरुष के भेदज्ञानद्वारक साक्षात्कार के लिए अर्थात् विवेकज्ञान के लिये मिथ्यावादी व्यक्ति के मिथ्यावाद से सन्तुष्ट होकर प्रयत्न नहीं करता है, उस असत् उपदेश – मिथ्यावाद से सन्तुष्ट व्यक्ति की ये चार आध्यात्मिक तुष्टियाँ होती हैं। जिस कारण से वे तुष्टियाँ आत्मा को अधिकृत करके अर्थात् आत्मा के उद्देश्य से होती है, इसलिये उन्हें आध्यात्मिक तुष्टियाँ कहते हैं।

प्रकृति : प्रकृति नाम वाली तुष्टि इस प्रकार है कि किसी व्यक्ति के यह कथन या कथनात्मक उपदेश करने पर कि विवेकसाक्षात्कार प्रकृति का ही परिणाम भेद – परिणाम विशेष है और उसे प्रकृति ही करती है, कारण कि साक्षात्कार बुद्धि का धर्म है और बुद्धि प्रकृति का परिणाम विशेष है इसलिए गुरू शिष्य को कहते हैं – हे वत्स!

तुम्हारा यह ध्यान तथा अभ्यास सब व्यर्थ है; श्रवण मनन भी सब बेकार है। इस प्रकार के उपदेश से उपदेष्टव्य शिष्य को प्रकृति में होने वाली जो तुष्टि – सन्तुष्टि – सन्तोष होता है उसे प्रकृति नामक तुष्टि कहते हैं, इसका दूसरा नाम अम्भ है। जैसे अम्भ – जल डुबो देने वाला होता है, वैसे ही प्रकृति भी संसार सागर में डुबो देने वाली है।

उपादन : विवेकज्ञान प्रकृति का परिणाम विशेष होता हुआ भी वह विवेकज्ञान प्रकृति मात्र से उत्पन्न नहीं होता, कारण कि प्रकृति सबके लिए समान योग वाली होने के कारण सबको सर्वदा विवेक ज्ञान होने लग जाएगा, परन्तु होता नहीं है, वह प्रव्रज्या – संन्यास से होता है, इसलिए हे आयुष्मान! इस संन्यास का उपादान – ग्रहण करो, इस ध्यानाभ्यास से क्या फायदा? अर्थात् यह सब व्यर्थ है। इस उपदेश से होने वाला जो सन्तोष, उपादानाख्या तुष्टि ही सन्तोष है। इसका दूसरा नाम सलिल है।

काल : संन्यास भी शीघ्र ही विवेक ज्ञान द्वारा मोक्ष प्रदान करने वाला नहीं है। वह संन्यास भी कुछ काल परिपाक की अपेक्षा करके ही हे वत्स! तुम्हें विवेकज्ञानरुपा सिद्धि प्रदान कर सकेगा। इसलिए तुम्हारा उत्तम होना सर्वथा व्यर्थ है। इस उपदेश से काल की प्रतीक्षा में जो सन्तोष होता है वह कालनाम्नी तुष्टि कहलाती है, क्योंकि जिस प्रकार उपयुक्त समय पर हुई वृष्टि के योग से पृथ्वी फलवती होती है उसी प्रकार प्रत्येक सिद्धि समय आने पर ही प्राप्त होती है असमय में नहीं। इसी का दूसरा नाम ओघ है।

भाग्य : विवेकख्याति न तो प्रकृति से, न काल और न उपादान से ही होती है, अपितु भाग्य से ही होती है। अतएव मदालसा के पुत्र अत्यन्त ही बाल होते हुए भी माता के उपदेश मात्र से विवेकख्याति प्राप्त कर मुक्त हो गये। इस कारण से हे वत्स! भाग्य ही सबके प्रति हेतु है अन्य नहीं। भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्, इस उपदेश से सन्तोष हो जाना भाग्य नामक तुष्टि है इसे वृष्टि भी कहते हैं। जो अकस्मात् ही विवेकज्ञान की वर्षा करे, वही भाग्य कही जाती है।

बाह्यतुष्टि : बाह्य तुष्टियाँ शब्द, स्पर्श आदि विषयों में वैराग्य हो जाने से पांच प्रकार की हैं। अनात्मभूत प्रकृति, महत्, अहंकार आदि को आत्मा मानने वाले पुरुष को शब्दादि बाह्य विषयों में वैराग्य हो जाने पर जो तुष्टियाँ होती हैं, वे बाह्य तुष्टियाँ हैं, क्योंकि आत्मज्ञान न होने पर अनात्म जड़वर्ग को आत्मा मानकर होने वाली प्रवृत्ति से बाह्य तुष्टियाँ ही होती हैं। पांच बाह्य तुष्टियाँ वैराग्य हो जाने के पश्चात् होती हैं वैराग्य के हेतु पांच शब्द स्पर्शादि विषय हैं, अतः वैराग्य भी पांच है और वैराग्य के पांच होने से तुष्टियाँ भी पांच हैं।

उपरम : जिसके द्वारा विषयोपभोग से निवृत्ति होती है, वही उपरम – वैराग्य है। विषयों से उपरम होना यह विषयोपरम कहलाता है। विषय शब्दादि पांच है जो कि भोग्य हैं, इसलिए उपरम भी पांच हैं। अर्जन, रक्षण, क्षय, भोग तथा हिंसा इन पांच दोषों के दर्शन के कारण उपरम भी पांच होते हैं। अर्जन, रक्षण आदि पांच दोषों को दिखलाते हैं कि – सेवा आदि जो धनोपार्जन के उपाय है वे सेवक आदि को दुःखी करते हैं। कृषि व्यापार करना आदि जो धनोपार्जन के उपाय है, वे भी सब दुःख देने वाले ही हैं। इस प्रकार से सर्वंदुःखमयंजगत् ऐसी विचारधारा के आधार पर विषयों से वैराग्य होने पर जो मन को सन्तोष होता है वह पार नामक तुष्टि है, क्योंकि वह तुष्टि वैराग्य द्वारा संसार से पार करने वाली है।

सुपार : अर्जित धन से राजा, एकागारिक – चोर से, अग्नि से एवं जल की बाढ़ आदि से कदाचित नष्ट न हो जाए, इस प्रकार की लगातार चिन्ता से उस धन के संरक्षण में होने वाला जो महान दुःख होता है, उस दुःखानुभूतिजन्य विषयोपरम होने पर जो तुष्टि मिलती है वह सुपार नामक दूसरी तुष्टि कही जाती है वैराग्य द्वारा सुखपूर्वक संसार के पार करने में कारण है, अतः इसे सुपार कहते हैं।

पारापार : उसी प्रकार महान् प्रयास से उपार्जित धन भोग करने पर नष्ट हो जाएगा, इस प्रकार उस धनक्षय की भावना करने वाले व्यक्ति को विषयोपरम होने पर होने वाली जो तुष्टि है, वह तीसरी तुष्टि पारापार नामक तुष्टि कही जाती है। धनक्षय की भावना होने पर भी यदि धनोपार्जन में प्रवृत्ति बनी रही तो व्यक्ति दुःखसागर से पार हो जाएगा और यदि प्रवृत्ति नहीं रही तो वह उसी दुःखसागर में पड़ा हुआ गोते लगाता रहेगा, पार न हो पाएगा। इसलिए यह पारापार नामक तुष्टि कही जाती है।

अनुत्तमाम्भ : इसी प्रकार शब्दादि विषयों के भोगाभ्यास से कामनाएं बढती चली जाती है और विषयों की प्राप्ति न होने पर कामना वाले पुरुष उन कामनाओं से दुःखी होते हैं। इस प्रकार से विषयोपभोगों में दोषों की भावना करने वाले व्यक्ति को विषयोपरम होने पर जो तुष्टि होती है, वह चतुर्थ तुष्टि, अनुत्तमाम्भ तुष्टि कहलाती है।

उत्तमाम्भतुष्टि : प्राणियों की हिंसा किए बिना मांस की प्राप्ति नहीं होगी, और मांस भक्षण के बिना शरीर सबल नहीं होगा, बिना शरीर – प्राबल्य के विषयोपभोग संभव नहीं है, और हिंसा बहुत ही अनर्थकारी है। इस प्रकार हिंसा दोष दर्शन से विषयोपरम होने पर जो तुष्टि, वह पांचवी तुष्टि उत्तमाम्भ कही जाती है।

इस प्रकार चार आध्यात्मिक तुष्टियाँ और पांच बाह्य तुष्टियाँ; कुल नव तुष्टियाँ सांख्याचार्यों को सर्वथा अभिमत हैं।

सिद्धियाँः

"ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेःपूर्वोऽङ्कशस्त्रिविधः"।।51।।

व्याख्या : प्रस्तुत कारिका में गौण और मुख्य भेदों के साथ सिद्धियों को बतलाते हैं। ऊह, शब्द, अध्ययन इन तीन प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक, एवं आधिभौतिक दुःख का विनाश, सुहृत्प्राप्ति और दान, ये आठ सिद्धियाँ हैं। सिद्धि के पूर्व में जो विपर्यय, अशक्ति तथा तुष्टि ये तीन हैं, ये तीनों प्रतिबन्धक – विरोधी हैं। उह आदि सिद्धियों का तात्पर्य बहुत कुछ अस्पष्ट हो गया है। इस विषय में इतना ही ज्ञान है कि सिद्धि के तीन विरोधी हैं – विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि। यह भी ज्ञात है कि मनुष्य प्राणी में सिद्धि प्रधानतया व्यवस्थित है। इसका लक्षण है – यथेष्टस्य साधनं सिद्धिः। यह अभीष्ट सिद्ध करना आठ प्रकार का है, यह कारिकाकार कहते हैं इन सिद्धयों की जो व्याख्या वाचस्पति आदि ने की है, वह व्याख्या बहुत कुछ काल्पनिक प्रतीत होती है। इनके समय इन भेदों की प्राचीन व्याख्या लुप्त हो गयी थी – ऐसा ज्ञात होता है।

ग्रन्थकार अप्रधान तथा प्रधान भेदों के साथ आठ प्रकार की सिद्धियाँ कहते हैं। विनष्ट किये जाते हुए दुःख के त्रिविध होने के कारण त्रिविध दुःख के विनाश भी तीन होते हैं, ये तीन सिद्धियाँ मुख्य हैं। इनके उपायभूत होने के कारण अन्य पांच सिद्धियाँ गौण हैं। ये पांच भी करण और कार्य के रुप में व्यवस्थित है। इन आठ सिद्धियों में प्रथम अध्ययन नामक सिद्धि केवल कारण है। दुःखविघातरुप तीन मुख्य सिद्धियाँ केवल कार्य

हैं और मध्यपठित शब्द आदि सिद्धियाँ हेतु और हेतुमान दोनों हैं। शास्त्रविधिपूर्वक गुरुमुख से अध्यात्मविद्या के अक्षरों का ज्ञान अध्ययन नामक प्रथम सिद्धि है, जो तार कहलाती है। तार अर्थात संसारतरण हेतु। अगली कार्य शब्द नामक सिद्धि है। कारिकास्थ शब्द पद शब्दोत्पन्न अर्थज्ञान का उपलक्षण है। शब्दजनित ज्ञानरुपकार्य में कारण रुप शब्द का उपचार कर के ऐसा कहा गया है। यह दूसरी सिद्धि है जो सुतार कहलाती है। इस प्रकार अक्षरानुपर्वीग्रहण तथा अर्थज्ञान रुप दो प्रकार का श्रवण सिद्ध हुआ। ऊह का अर्थ तर्क अर्थात् शास्त्र के अविरोधी युक्ति से शास्त्रोक्त अर्थों को परीक्षा। परीक्षा का अर्थ है – संशय और पूर्वपक्ष के निराकरण द्वारा उत्तर–पक्ष की स्थापना। इसे ही आगमवादी मनन कहते हैं। यह तीसरी सिद्धि तारतार कहली है। जो मनन स्वयं ही किया गया है वह असम्यक् मनन् है, क्योंकि वह सुहृतों द्वारा अनुमत नहीं हुआ है, इसलिए द्वितीय मनन अर्थात् अन्य प्रकार का मनन सुहृत्प्राप्तित्र कहते हैं। साधक युक्तियों के द्वारा स्वयं परीक्षित सिद्धान्तों में तब तक कोई स्थिरनिश्चय नहीं कर पाता जब तक गुरु, शिष्य और सहाध्यायियों से एकवाक्यता नहीं होती, अतः सुहृदों – एकमतावलम्बी गुरुशिष्य – सतीर्थों की प्राप्ति सुहृत्प्राप्ति है। यही चौथी सिद्धि रम्यक कहलाती है। इन आठ सिद्धियों का वर्णन निम्नलिखित है –

ऊह : विनष्ट हुये दुःख के तीन प्रकार के होने के कारण उसकी निवृत्तियाँ भी तीन प्रकार की हैं और ये दुःखविघात रुपा तीनों सिद्धियाँ मुख्य हैं। इन दुःखविघातरुप तीन सिद्धियों के उपायभूत होने से इतर पांच सिद्धियाँ गौण हैं और वे पांच सिद्धियाँ भी हेतु तथा हेतुमान होने से अर्थात् कारण कार्य उभयरुप से व्यवस्थित है।

उन आठ सिद्धियों में प्रथम अर्थात् दुःख विघात के पूर्व जो अध्ययन नामक सिद्धि है , वह कारण ही होती है और दुःखविघातरुप जो तीन मुख्य सिद्धियाँ हैं वे हेतुमान – कार्य ही होती हैं। मध्यम – मध्य पठित शब्दादि सिद्धियाँ हेतु और हेतुमान कार्य यानी दोनों होती हैं।

अध्ययनसिद्धि विवेचन : समिधा हाथ में लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास शिष्य अध्ययन के लिये जाए। इस शास्त्रीय विधि के कथनानुसार गुरुमुख से अध्यात्मविद्याप्रतिपादक जो अक्षरों के स्वरुप का अर्थात् शब्दरुप अक्षरों के ह्रस्व, दीर्घ, स्वरित, स्वरविशेषात्मक स्वरुप का ग्रहण – ज्ञान प्राप्त करना ही वस्तुतः अध्ययनसिद्धि नामक प्रथमा सिद्धि है, जिसे तार कहते हैं। तार का अर्थ है – पार, अर्थात् इस संसार सागर से पार करने वाली सिद्धि का ही दूसरा नाम तार है। क्योंकि ज्ञानप्लव से ही पार हुआ जा सकता है।

शब्दसिद्धि : अध्ययन का कार्य शब्दसिद्धि है। 'शब्द' यह पद शब्दजनित अर्थज्ञान का सूचक है, क्योंकि अर्थज्ञानरुप कार्य को शब्दात्मक कारण लक्षणावृत्ति से बतलाता है। यह द्वितीया सिद्धि है, इसे सुतार भी कहते हैं क्योंकि यह सरलता से सुखपूर्वक तार देती है अर्थात् संसार सागर से पार कर देती है।

न विना भावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन्भावनिवृत्तिः।
लिन्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विधः प्रवर्तते सर्गः।।52।।

व्याख्या : धर्म, अधर्म, ज्ञान–अज्ञान, वैराग्य–अवैराग्य तथा ऐश्वर्य–अनैश्वर्य, इन आठ भावों के बिना सूक्ष्मशरीर उत्पन्न नहीं हो सकता है, और तन्मात्राओं से समुत्पन्न सूक्ष्मशरीर के बिना धर्माधर्म आदि भावों की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। अतः प्रत्येक के

बिना दोनों का स्वरुप सर्वथा असम्भव है, इसलिए लिंगाख्य एवं भावाख्य दोनों प्रकार की सृष्टि आवश्यक है।

विशेष : तन्मात्र सर्ग के बिना प्रत्यय सर्ग की न तो भोगात्मक पुरुषार्थ साधनता ही बन सकती है, और न स्वरुपोत्पत्ति ही हो सकती है। इसलिए एक दूसरे के बिना न तो एक दूसरे के स्वरूप की सिद्धि हो सकती है और न पुरुषार्थ साधनता निषपन्न होती है। अतः तन्मात्र सर्ग – लिंगाख्य सृष्टि तथा प्रत्यय सर्ग – भावाख्य सर्ग दोनों नितान्त आवश्यक हैं। इसका कारण है कि उभयविध सृष्टि के बिना भोग कदपि संभव नहीं है। वही वाचस्पति मिश्र ने कहा है – भोगः पुरुषार्थो न इत्यादि। अर्थात् भोगात्मक पुरुषार्थ भोग्य जो शब्दादि विषय तथा भोगायतन जो शरीरद्वय है, उनके बिना कदापि संभव नहीं है। अतः तन्मात्र सर्ग सर्वथा उपपन्न – उपपत्तिसिद्ध है। अर्थात् जो भोग भोग्य शब्दादि विषय हैं उनके बिना संभव नहीं हैं, वहीं भोग भोगसाधन इन्द्रियों के बिना संभव नहीं है, तथा भोग साधन अन्तःकरणों के बिना भी संभव नहीं है। और वे भोगसाधन इन्द्रियों तथा अन्तःकरण धर्माधर्म आदि भावों के बिना संभव नहीं हैं, क्योंकि इन्द्रियाँ और अन्तःकरण सुखदुःख भोग का साधन होने से धर्माऽधर्म कारण सापेक्ष हैं। इसलिए उभयविध पूर्वोक्त सर्ग सर्वथा आवश्यक है। कैवल्यरुप जो पुरुषार्थ, उसकी कारणीभूत जो विवेकख्याति – विवेकज्ञान, वह उभयसर्ग से अर्थात् प्रत्ययसर्ग तथा तन्मात्रसर्ग रुप उभयविध सर्ग के बिना कदापि उपपन्न – उपपत्तिसिद्ध नहीं हो सकता है। अतः उभयविध सर्ग सर्वथा उपपन्न है।

22.3 प्रत्ययसर्ग के विशेष संदर्भ

आत्मज्ञान या विवेकसाक्षात्कार मोक्ष का कारण है। आत्मज्ञान के लिए जड़ेतर ज्ञान की आवश्यकता है। सांख्यदर्शन सत्कार्यवादी है। इसके अनुसार सृष्टि का मूल कारण प्रकृति है और प्रकृति की ही परिणामपरम्परा से इस विश्व की सृष्टि हुई है। प्रकृति से लेकर पञ्चमहाभूतों तक जो विचारधारा चलती है, उसको हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। ज्ञानवृत्ति या बुद्धिवृत्ति जिसके विकास को Intellectual creation कहा जाता है और पञ्चतन्मात्र तथा पञ्चमहाभूत जिसके विकास को Physical creation कहा जाता है।

मूल प्रकृति से उत्पन्न बुद्धि और उसका विकास अहंकार एवं अहंकार से उत्पन्न एकादश इन्द्रियाँ इतने बुद्धिसर्ग के अंग है। बुद्धि का धर्म है निश्चय करना। इस बुद्धि के सात्विक अंश से धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य की उत्पत्ति होती है। धर्म के दो भेद हैं – अभ्युदयसाधक एवं निःश्रेयससाधक। ज्ञान ही बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है। बाह्यज्ञान–शिक्षा, कल्पादिसम्बन्धी एवं अभ्यन्तर ज्ञान–प्रकृति पुरुष विवेक। वैराग्य–दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णा को कहते हैं। यह भी यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय एवं वशीकार भेद से चतुर्विध है। ऐश्वर्य में – अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्त्व है। धर्मादिक चार निमित्तों के फल – उर्ध्वगमन, प्रकृतिलय, आविर्भाव, अपवर्ग ये क्रम से चार नैमित्तिक हैं। अधर्मादि में इसका विपर्यय है।

"अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मोज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तमसमस्माद् विपर्यस्तम्"।।

उपर्युक्त धर्माधर्मादि आठ भावों का संक्षेप से चार भागों में वर्गीकरण दिया गया है–

"एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाऽशक्तितुष्टिसिद्धयाख्यः।
गुणवैषम्यविमर्दात् तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत्"।।

विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि ये चार बुद्धि के संक्षिप्त परिणाम हैं। विपर्यय में अज्ञान आता है जबकि अशक्ति में अनैश्वर्य, अवैराग्य एवं अधर्म्। तुष्टि में धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य और सिद्धि में ज्ञान का अन्तर्भाव होता है। ये विपर्ययादि बुद्धि के ही परिणाम हैं। सत्व, रजस एवं तमस के कारण इनमें मोक्ष के प्रति बाधकत्त्व एवं साधकत्व होता है। गुणों की विषमता से उत्पन्न उपमर्द अर्थात् एक एक या दो दो न्यून बल वालों के अभिभव से पचास भेद हो जाते हैं। वे निम्न प्रकार हैं –

"पञ्च विपर्ययभेदाभवन्त्यशक्तिश्च करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदा तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः"।।

विपर्यय के पांच भेद करणों के दोष के कारण, अशक्ति के अट्ठाईस भेद, तुष्टि के नव भेद और सिद्धि के आठ भेद होते हैं।

विपर्यय के पांच भेदों का सूक्ष्मतम भेद

विपर्यय के तम, मोह, महामोह, तामिस्र एवं अन्धतामिस्ररुप जिनको शास्त्रान्तर में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेष कहते है, उनके निम्नलिखित सूक्ष्मभेद ये हैं–

"भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा, तथा भवत्यन्धतामिस्रः"।।

तम : अविद्या के आठ प्रकार हैं। आत्मभिन्न प्रकृति, महत्, अहंकार और तन्मात्राओं में आत्मभावना अविद्या या तमस् है।

मोह : मोह भी आठ प्रकार का है। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों के लाभ से अपने को अजर अमर मानना।

महामोह : दिव्यादि भेद से दस प्रकार के शब्दादि विषयों में उपादेय बुद्धि होने के कारण राग होना ही महामोह है।

तामिस्र : अष्टविध ऐश्वर्य तथा दिव्यादिव्य शब्दादि 10 विषयों में से किसी के उपर यदि अप्रीति हो गयी हो तो उसके प्रति द्वेष अथवा दूसरों द्वारा उपभुज्यमान पदार्थों को देखकर द्वेष होना ही तामिस्र है।

अन्धतामिस्र : तामिस्र के 18 विषयों को प्राप्त करने का प्रबल आग्रह तथा प्राप्त करके भोग के समय उनके विनाश का भय अन्धतामिस्र है। इस प्रकार यह 5 प्रकार का विपर्यय सूक्ष्म भेदों के कारण् 62 प्रकार क है।

अशक्ति के 28 भेद

"एकादशेन्द्रियवधाः सहबुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययातुष्टिसिद्धीनाम्"।।

अशक्ति के अट्ठाइस भेद हैं। 11 इन्द्रियवध – बहरापन, कुष्ठ, अन्धापन, स्वादों का ज्ञान न होना, गन्ध का ज्ञान न होना, गूंगापन, हाथ का टूटा होना, लंगडापन, नपुंसकत्व, गुदादोष तथा मनःस्तब्धता है। बुद्धि के भावों में जो 9 तुष्टि और अष्ट सिद्धियाँ होती

हैं उनका अभाव तथा अभिभव, कुल मिलाकर, इस तरह से ये 28 अशक्तियाँ हैं। सांख्यशास्त्र के अनुसार भावों में धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य में जितनी भी उन्नतावस्था हो, ये कोई मोक्ष के साधन नहीं है। इसी प्रकार हम आगे देखेंगे कि तुष्टि मोक्ष की साधिका नहीं है। किन्तु अशक्ति में भावों की अकर्मण्यता से जो असामर्थ्य दोष दिखाई पड़ता है वह तुष्टि में नहीं है। तुष्टि मोक्ष का साधन नहीं है और किसी भाव या धर्म के अभाव की सूचक भी नही है। इस अशक्ति में 9 तुष्टियाँ– जो कि प्रकृतितुष्टि, कालतुष्टि, उपादानतुष्टि, भाग्यतुष्टि, तथा शब्दोपरमा, स्पर्शोपरमा, रुपोपरमा, रसोपरमा, गन्धोपरमा आदि है – उनके अभाव पाये जाते हैं। अतः इन तुष्टियों के अभाव से प्रकृत्यातुष्टिकालातुष्टि, उपादानातुष्टि, भाग्यातुष्टि, शब्दोपरमातुष्टि, स्पर्शोपरमातुष्टि इत्यादि होती हैं। इसी तरह से ऊह, शब्द, अध्ययन, आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक दुःखानभिघात, सुहृदाप्राप्ति तथा दान भी अदान में परिणत होकर – अभाव की सूचना देती हैं।

तुष्टि के 9 भेद

"आध्यात्मिकयश्चतस्रः प्रकृतुपादानकालभागाख्याः।
बाह्या विषयोपरमात् पञ्च नवतुष्टयोऽभिमताः"।।

आभ्यन्तर और बाह्य भेद से 9 तुष्टियाँ वर्णित हैं।

1. **प्रकृतितुष्टि** : यद्यपि प्रकृति पुरुष के भेदज्ञान से ही मुक्ति होती है यह सिद्धान्त है तथापि किसी अल्पज्ञ गुरु द्वारा इस उपदेश से कि विवेक साक्षात्कार प्रकृति का कार्य है अतः प्रकृति मुक्त ही कर देगी, ध्यान, समाधि की आवश्यकता नहीं है। ऐसा सन्तोष हो जाने से इसे प्रकृति तुष्टि कहते हैं।

2. **उपादानतुष्टि** : यद्यपि विवेक से तुष्टि होती है परन्तु वह प्रकृति मात्र से नहीं होती। क्योंकि यदि ऐसा हो तो प्रकृति सबके लिये समान होने से सब विवेकयुक्त होकर मुक्त हो जायेंगे, पर ऐसा सम्भव नहीं है। अतः संन्यास लेने से ही विवेक ज्ञान होता है ध्यानादि की आवश्यकता नहीं है; इस प्रकार के उपदेश से जो तुष्टि होती है वह उपादान तुष्टि है उपादानतुष्टि सलिल तुष्टि भी कहलाती है।

   उपवृद्धावस्थायाँ समीपे आदीयते गृह्यते यः।
   सन्यासाख्यो धर्मः सा एव उपादानतुष्टिः।।

3. **कालतुष्टि** : "संन्यास भी शीघ्र अपवर्ग देने वाला नहीं है। वह कालान्तर में परिपक्व होकर ही विवेकज्ञान देगा, अतः उद्विग्न होने से कोई लाभ नहीं है'' ऐसे उपदेश से जो तुष्टि होती है वह काल नामक तुष्टि है जो ओघ भी कहलाती है।

4. **भाग्यतुष्टि** : विवेकज्ञान न प्रकृति से, न काल से, न सन्यास ग्रहण से ही होता है। इसलिये मदालसा की सन्तानें बाल्यावस्था में ही माता के उपदेश से ही विवेकज्ञानयुक्त होकर मुक्त हो गई। इसलिए भाग्य ही हेतु है अन्य कुछ नहीं–ऐसे उपदेश से जो तुष्टि होती है वह भाग्य नामक तुष्टि है, जो वृष्टि भी कहलाती है।

बाह्यविषयोपरामत्पञ्च : शब्दादि 5 विषयों से 5 बाह्य तुष्टियाँ प्राप्त होती हैं। इन तुष्टियों के ये ही कारण हैं शब्द, स्पर्श, रुप, रस एवं गन्ध के अर्जन में कष्ट, अर्जित हो गये के रक्षण में कष्ट, रक्षण के समय विनाश की आशंका से कष्ट, विषयोपभोग के समय भोग की अशक्ति तथा भोग अत्यधिक बढ जाने से कष्ट तथा हिंसा के बिना शब्दादि का अर्जन नहीं हो सकता इसलिए ये कष्ट कारण है। अतः जब इन क्लेशों

को सोचकर ऐसे 5 प्रकार के संतोष हो जाते हैं तो चित्त विषय से निवृत्त हो जाता है। इनके दूसरे नाम योगदर्शन में इस प्रकार हैं – अम्भ, सलिल, ओघ, सृष्टि, पार, सुपार, पारापार, अनुत्तमाम्भ, उत्तमाम्भ हैं।

अष्टसिद्धि

"ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेःपूर्वोऽङकशस्त्रिविधः"।।

ऊह, शब्द, अध्ययन, त्रिविधदुःखविनाश, सुहृत्प्राप्ति तथा दान ये आठ सिद्धियाँ हैं। अध्ययनशास्त्रविधिपूर्वक गुरुमुख से अध्यात्मविद्या के पारायण का श्रवण अध्ययन नामक प्रथम सिद्धि है। जो संसार तरण का प्रथम हेतु होने से तार कहलाती है।

शब्द : अध्ययन का कार्य शब्द है। कार्य में कारण के आरोप द्वारा शब्द पद से शब्दोत्पन्न अर्थज्ञान सूचित होता है। यह दूसरी सिद्धि है, जो सुखपूर्वक संसारतारक होने से सुतार कहलाती है। इस प्रकार पारायण तथा अर्थरुप से दो प्रकार का श्रवण हुआ।

ऊह : शास्त्रानुकूल युक्तियों से शास्त्रोक्तविषय की परीक्षा ऊह है और यह परीक्षा सन्दिग्ध पूर्वपक्ष के परित्याग द्वारा उत्तरपक्ष या सिद्धान्त की स्थापना है। इसे ही शास्त्रज्ञ मनन कहते हैं। यह तीसरी सिद्धि अध्ययन और शब्द से अधिक तारक होने से तारतार कहलाती है। आगम के प्रतिपाद्य विषय की ऐसे न्याय से परीक्षा करना जो आगम विरोधी न हो, तर्क कहा जाता है।

सुहृत्प्राप्ति : साधक युक्तियों के द्वारा स्वयं परीक्षा किये हुए सिद्धान्त में तब तक विश्वास नहीं करता जब तक की गुरु, शिष्य और सहाध्यायियों के साथ संवाद नहीं कर लेता। इसलिए सुहृदों का संवाद प्राप्त होना सुहृत्प्राप्ति है। यही चौथी सिद्धि शास्त्रार्थ संवाद में रमणीय होने के कारण रम्यक् कहलाती है।

दान : ज्ञानाभ्यास से उत्पन्न शुद्धविवेकख्याति में अन्तर्भूत है। क्योंकि यहां दान पद की निष्पत्ति शोधन अर्थ वाली दैप् धातु से होने के कारण उसका अर्थ विवेकज्ञान की शुद्धि है। यह पांचवी सिद्धि सार्वकालिक आनन्द का हेतु होने के कारण सदामुदित कहलाती है।

दुःखत्रयविनाश : स्वरुप तीनों मुख्य सिद्धियाँ प्रमोद, मुदित और मोदमान कहलाती है। इस प्रकार ये कुल 8 सिद्धियाँ हैं। ये सिद्धियाँ मोक्षदीपिका हैं। सिद्धि के पहले विषयादि जो तीन हैं, वे सिद्धि के लिए अन्तराय या बाधक स्वरुप हैं। अतः इनका अतिक्रमण करके तब सिद्धि प्राप्त होती है। जिस प्रकार कैवल्य प्राप्त करने के लिए प्रकृति–पुरुष विवेकख्याति और विवेकख्याति के लिये प्रकृति तथा उससे उत्पन्न सभी वस्तुओं का ज्ञान आवश्यक है वैसे ही सिद्धि प्राप्त करने के लिये प्राथमिक दशाएं तथा उसके अन्तराय क्या होते हैं, उनका ज्ञान भी आवश्यक है, इसे ही प्रत्यय सर्ग कहते हैं।

22.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने प्रत्ययसर्ग के अंतर्गत सांख्यकारिका में दिए गए विवेचन का अध्ययन किया तथा प्रत्यय अर्थात बुद्धि के परिणामों को भी जाना। प्रत्ययसर्ग के

विभिन्न रूपों तथा सिद्धियों की कारिकाओं में प्रदत्त विवरणानुसार अवगाहन किया। विशेष चर्चा के अंतर्गत बुद्धि के परिणामों, विपर्यय के सूक्ष्म भेदों तथा अशक्ति, तुष्टि एवं अष्टसिद्धि आदि के भेदों – उपभेदों पर भी विस्तार से आपने जाना।

22.5 शब्दावली

अशक्ति – ग्यारह इन्द्रियदोष, नौ तुष्टिविपर्ययदोष तथा आठ सिद्धि विपर्ययदोष – इन सभी को मिलाकर यह अठाईस भेद वाली अशक्ति है।

ऐश्वर्य – ईश्वर अर्थात् स्वामी का भाव ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य आठ हैं।

बाह्यज्ञान – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् एवं ज्योतिष तथा वेद एवं अष्टादशपुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र बाह्यज्ञान हैं।

आभ्यन्तरज्ञान – प्रकृति तथा पुरुष का ज्ञान आभ्यन्तर है। बाह्यज्ञान से लोक में अनुराग तथा आभ्यन्तरज्ञान से मोक्ष होता है।

प्रत्ययसर्ग– जिससे प्रतीति अर्थात् ज्ञान हो, उसे प्रत्यय या बुद्धि कहते हैं, उसका सर्ग प्रत्यय सर्ग है।

विपर्यय – अज्ञान विपर्यय है। अविद्या,अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश क्रमशः तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र, नाम से पांच विपर्यय विशेष हैं।

विराग – राग का अभाव विराग है।

दिव्य – शब्द, स्पर्श ,रुप, रस, गन्ध इनका सूक्ष्मरुप पांच तन्मात्र हैं जो योगियों के ज्ञान का विषय होने से दिव्य हैं।

अदिव्य – शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गन्ध का स्थूल रुप भौतिक है। ये सामान्य मनुष्यों के ज्ञान का विषय होने से अदिव्य हैं।

सर्ग – गुणों का प्रवृत्तिरुप कार्य सर्ग है।

सिद्धि – ऊह, शब्द, अध्ययन, त्रिविध दुःख विनाश, सुहृतप्राप्ति और दान ये आठ सिद्धियाँ हैं।

शब्दसिद्धि – शब्द से अर्थज्ञान होना शब्द नामक सिद्धि है।

सुहृत्प्राप्ति – साधक युक्तियों के द्वारा स्वयं परीक्षा किये हुये शास्त्रार्थ या सिद्धान्त में तब तक विश्वास नहीं करता जब तक कि गुरु, शिष्य और सहपाठियों के साथ परस्पर संवाद नहीं कर लेता। इसलिए सुहृदों अर्थात् गुरु, शिष्य तथा सहपाठियों के साथ परस्पर संवाद प्राप्त होना सुहृतप्राप्ति है।

दान – दान पद की निषपत्ति शोधन अर्थ परक दैप् धातु से होने के कारण उसका अर्थ विवेकज्ञान की शुद्धि है। सन्दिग्ध और विपरीत ज्ञान तथा उनके संस्कारों का परिहार होने पर विमल हुए चित्तप्रवाह में विवेकज्ञान की स्थिति विवेकज्ञान की शुद्धि अर्थात् दान है।

22.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण, वाचस्पतिमिश्रकृतसांख्यतत्त्वकौमुदीसहित, डॉ. सगजाननशास्त्री मूसलगांवकरकृत हिन्दी अनुवादसहित, चौखम्भासंस्कृत संस्थान, सातवां संस्करण, 2000।
2. सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण, गौडपादभाष्यसहित, पं.श्रीज्वालाप्रसादगौडकृत हिन्दी व्याख्या सहित, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, पुनर्मुद्रित, 2001।
3. सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण, युक्तिदीपिकासहित, डॉ. रमाशंकरत्रिपाठीकृत तत्त्वप्रभा संस्कृतटीका, हिन्दी अनुवाद सहित, वाराणसी, कृष्णदास अकादमी।
4. सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण, माठरकृतमाठरवृत्तिसहित, पं. थानेशचन्द्र उप्रेतीकृत हिन्दीव्याख्या सहित, वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2001।
5. सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण, वाचस्पतिमिश्रकृतसांख्यतत्त्वकौमुदी, पण्डित श्रीकृष्णवल्लभाचार्य स्वामीनारायणविरचिता सांख्यकारिका तत्त्वकौमुदीकिरणावली, श्रीकृष्णवल्लभाचार्य स्वामीनारायणकृतसांख्यकारिकाभाष्यम्, गौडपादभाष्यसहितम्, वाराणसी, व्यास प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 1989।

22.8 अभ्यास प्रश्न

1. सांख्य के अनुसार सृष्टि कितने प्रकार की होती है?
2. बुद्धि के प्रमुख परिणाम कितने हैं?
3. प्रत्यय सर्ग के कुल कितने भेद हैं?
4. विपर्यय के कुल कितने भेद हैं?
5. अशक्ति के कुल कितने भेद हैं?
6. तुष्टि के नौ भेद कौन कौन से है?
7. आठ प्रकार की सिद्धियाँ कौन कौन सी हैं?
8. अशक्ति किसे कहते हैं?